[2018] 3 उम. नि. प. 199

दाताराम सिंह

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य

6 फरवरी, 2018

न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर और न्यायमूर्ति दीपक गुप्ता

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 436 – जमानत का अधिकार – जमानत मंजूर करने या उससे इनकार करने के लिए कारक – संदिग्ध व्यक्ति को रिमांड पर भेजने या अभियुक्त व्यक्ति को पुलिस अभिरक्षा या न्यायिक अभिरक्षा में भेजने संबंधी किसी आवेदन पर विचार करते समय मानवीय रुख अपनाने की आवश्यकता – यदि अभियुक्त को अन्वेषण के दौरान और आरोप पत्र फाइल करने के पश्चात् भी गिरफ्तार नहीं किया जाता है तो इसका यह अभिप्राय होगा कि अभियुक्त के फरार होने या विचारण में बाधा पहुंचाने की आशंका नहीं है, इसलिए, विचारण न्यायाधीश को जमानत मंजूर करने या उससे इनकार करने संबंधी अपने विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायसम्मत रीति में और मानवीय तरीके से तथा सहानुभूतिपूर्वक करना चाहिए ।

प्रस्तुत मामले में, परिवादी ने यह अभिकथन करते हुए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई कि अपीलार्थी ने उसके साथ 37 लाख रुपए से अधिक की रकम का छल किया था और इसलिए उसने भारतीय दंड संहिता की धारा 419, 420, 406 और 506 के अधीन दंडनीय अपराध कारित किया था । यह भी अभिकथन किया गया था कि अपीलार्थी ने परिवादी के पक्ष में 18 लाख रुपए का एक चैक जारी किया था (जिसके द्वारा 37 लाख रुपए की रकम का एक भाग लौटाया गया) किन्तु उसने परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 का अतिक्रमण करते हुए उस चैक का भुगतान रुकवा दिया था । इसके पश्चात्, परिवादी ने अपीलार्थी द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन अपराध कारित किए जाने का अभिकथन करते हुए परिवाद मामला फाइल किया । इस परिवाद मामले में संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिया गया और अपीलार्थी को समन जारी किए गए । अन्वेषक अधिकारी ने अपीलार्थी के विरुद्ध एक आरोप पत्र फाइल किया । ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी को अन्वेषण

के दौरान गिरफ्तार नहीं किया गया था । अपीलार्थी ने, अपने विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किए जाने के पश्चात् गिरफ्तारी के डर से उच्च न्यायालय में अपने विरुद्ध दर्ज प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित करने के लिए समावेदन किया । उच्च न्यायालय ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित करने से इनकार कर दिया किन्तु अपीलार्थी को विचारण न्यायालय के समक्ष हाजिर होने के लिए दो मास का समय अनुदत्त किया । संभवतः, यह निदेश दिया गया था कि अपीलार्थी को इस अवधि के दौरान गिरफ्तार नहीं किया जाना चाहिए । अपीलार्थी ने एक बार विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए दो सप्ताह की अतिरिक्त अवधि की मांग करते हुए उच्च न्यायालय में फिर से समावेदन किया । ऐसा प्रतीत होता है कि यथा-प्रार्थित समय अनुदत्त कर दिया गया और अंततः, जब अपीलार्थी विचारण न्यायाधीश के समक्ष हाजिर हुआ और उसे न्यायिक अभिरक्षा में ले लिया गया था । अपीलार्थी तब से न्यायिक अभिरक्षा में है । अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया जमानत संबंधी आवेदन विचारण न्यायाधीश और उच्च न्यायालय द्वारा नामंजूर कर दिया गया, जिसे उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – दांडिक न्यायशास्त्र की मूलभूत अभिधारणा निर्दोषिता की उपधारणा है, जिसका अर्थ यह है कि जब तक किसी व्यक्ति को दोषी नहीं पाया जाता तब तक उसके बारे में यह विश्वास किया जाता है कि वह निर्दोष है । तथापि, हमारी दंड विधि में ऐसे उदाहरण भी हैं जहां कुछ विनिर्दिष्ट अपराधों के संबंध में किसी अभियुक्त पर विपरीत भार डाला गया है किन्तु यह एक अलग विषय है और इससे अन्य अपराधों की बाबत मूलभूत अभिधारणा का अपकर्षण नहीं होता है । फिर भी, हमारे दांडिक न्यायशास्त्र का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह है कि जमानत मंजूर करना एक साधारण नियम है और किसी व्यक्ति को जेल या किसी कारागार में या किसी सुधार-गृह में डालना (कोई भी किसी भी अभिव्यक्ति का प्रयोग कर सकता है) एक अपवाद है । दुर्भाग्यवश, ऐसा प्रतीत होता है कि इन मूलभूत सिद्धांतों में कुछ सिद्धांतों की अनदेखी की गई है जिसके परिणामस्वरूप अधिक से अधिक व्यक्तियों को लंबी-लंबी अवधियों के लिए बन्दी बनाया जा रहा है । इससे हमारे दांडिक न्यायशास्त्र या हमारे समाज को कोई फायदा नहीं होता है । इस संबंध में कोई संदेह नहीं है कि जमानत मंजूर करना या उससे इनकार करना संपूर्णतः उस न्यायाधीश के विवेकाधिकार पर निर्भर करता है जो मामले पर विचार कर रहा है किन्तु

फिर भी न्यायिक विवेकाधिकार के प्रयोग को इस न्यायालय द्वारा और देश के प्रत्येक उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए अनेक विनिश्चयों द्वारा परिसीमित किया गया है । तथापि, कभी-कभी इस संबंध में आत्मनिरीक्षण करने की आवश्यकता होती है कि किसी मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों के आधार पर किसी अभियुक्त व्यक्ति को जमानत देने से इनकार करना सही है अथवा नहीं । इस प्रकार आत्मनिरीक्षण करते समय जिन कारकों पर विचार करना आवश्यक होता है वे ये हैं कि क्या अभियुक्त को अन्वेषण के दौरान तब गिरफ्तार किया गया था जब उस व्यक्ति के पास साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने या साक्षियों को प्रभावित करने का संभवतः सर्वोत्तम अवसर था । यदि अन्वेषक अधिकारी किसी अभियुक्त को अन्वेषण के दौरान गिरफ्तार करना आवश्यक नहीं समझता है तो आरोप पत्र फाइल किए जाने के पश्चात् उस व्यक्ति को न्यायिक अभिरक्षा में रखने का ठोस मामला साबित किया जाना चाहिए । इसी प्रकार, यह अभिनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि क्या अभियुक्त अन्वेषक अधिकारी के समाधानप्रद रूप में अन्वेषण में भाग ले रहा था और फरार नहीं हो गया था या जब अन्वेषक अधिकारी द्वारा अपेक्षा की गई थी, उपस्थित नहीं हो रहा था । निश्चित रूप से, यदि कोई अभियुक्त अन्वेषक अधिकारी से बच नहीं रहा है या पीड़ित किए जाने संबंधी किसी वास्तविक और अभिव्यक्त भय के कारण छिप रहा है तो यह एक ऐसा कारक होगा जिस पर किसी न्यायाधीश के लिए समुचित मामले में विचार करना आवश्यक होगा । न्यायाधीश के लिए इस बात पर विचार करना भी आवश्यक है कि क्या अभियुक्त का यह प्रथम अपराध है या वह अन्य अपराधों के लिए भी अभियुक्त रहा है और यदि ऐसा है तो ऐसे अपराधों की प्रकृति और उसका साधारण आचरण कैसा था । किसी अभियुक्त की गरीबी या मानित दीनहीन हैसियत भी एक अत्यंत महत्वपूर्ण कारक है और संसद् ने भी दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 436 में स्पष्टीकरण सम्मिलित करते समय इस बात को ध्यान में रखा है । संसद् ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में धारा 436क अंतःस्थापित करके बन्दी बनाने के संबंध में उदार दृष्टिकोण अपनाया है । संक्षेप में, किसी न्यायाधीश से, किसी संदिग्ध व्यक्ति को रिमांड पर भेजने या किसी अभियुक्त व्यक्ति को पुलिस अभिरक्षा या न्यायिक अभिरक्षा में भेजने संबंधी किसी आवेदन पर विचार करते समय मानवीय रुख अपनाने की अपेक्षा होती है । इसके लिए अनेक कारण हैं, जिनके अंतर्गत अभियुक्त व्यक्ति की, चाहे वह कितना ही निर्धन क्यों न हो, गरिमा बनाए रखना, संविधान

के अनुच्छेद 21 की अपेक्षाएं और यह तथ्य भी शामिल है कि कारागारों में अपराधियों की संख्या अत्यधिक है जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक और अन्य समस्याएं पैदा हो रही हैं । (पैरा 2, 3, 4 और 5)

जमानत मंजूर करना नियम है और उससे इनकार करना अपवाद है । अतः जमानत से संबंधित उपबंध प्राचीन है और जमानत से संबंधित उपबंध का उदार निर्वचन करना लगभग एक शताब्दी पुराना है जो कि औपनिवेशिक काल का है । जमानत मंजूर करना या उससे इनकार करना संपूर्णतः उस न्यायाधीश के विवेकाधिकार के भीतर आता है जो मामले की सुनवाई कर रहा है और यद्यपि वह विवेकाधिकार निरंकुश है तथापि, इसका प्रयोग न्यायसम्मत रूप से और मानवीय रीति में और सहानुभूतिपूर्वक किया जाना चाहिए । इसके अलावा, जमानत मंजूर करने से संबंधित शर्तें इतनी कठोर नहीं होनी चाहिए जिससे कि उनका अनुपालन करना अक्षम हो, जिससे जमानत मंजूर करना अवास्तविक हो जाए । (पैरा 6 और 7)

अपीलार्थी के विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों की शुद्धता या अन्यथा के बारे में परीक्षा करना आवश्यक नहीं है । यह एक ऐसा मामला है जिस पर निसंदिग्ध रूप से विचारण न्यायाधीश द्वारा कार्यवाही की जाएगी । तथापि, जो कुछ महत्वपूर्ण है वह यह है कि अन्वेषण की संपूर्ण अवधि के दौरान, अपीलार्थी को अन्वेषक अधिकारी द्वारा गिरफ्तार नहीं किया गया था । तब भी जब अपीलार्थी को यह आशंका थी कि उसके विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किए जाने के पश्चात् उसे गिरफ्तार किया जा सकता है, उसे काफी समय तक गिरफ्तार नहीं किया गया था । जब उसने अपने विरुद्ध दर्ज की गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित करने के लिए इलाहाबाद उच्च न्यायालय में समावेदन किया तब उसे विचारण न्यायाधीश के समक्ष हाजिर होने के लिए दो मास का समय अनुदत्त किया गया था । ये सभी तथ्य इस बात के सूचक हैं कि इस बात की कोई आशंका नहीं थी कि अपीलार्थी फरार हो जाएगा या विचारण में किसी रीति में बाधा पहुंचाएगा । इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए, विचारण न्यायाधीश तथा उच्च न्यायालय को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायसम्मत रूप से करना चाहिए था और अपीलार्थी को जमानत मंजूर करनी चाहिए थी । इन सभी बातों और अन्य कारकों पर विचार करते हुए, यह उचित होगा यदि अपीलार्थी को उन शर्तों पर, जो कि विचारण न्यायाधीश द्वारा युक्तिसंगत रूप से नियत की जाएं, जमानत मंजूर की जाए । (पैरा 17 और 18)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2017] (2017) 10 एस. सी. सी. 658 :
इन रि-इनह्यूमेन कंडीशन्स इन 1382 प्रिज़न्स ; 5

[2017] (2017) 13 स्केल 609 :
नीकेश ताराचंद शाह बनाम **भारत संघ** ; 6

[1980] (1980) 2 एस. सी. सी. 565 :
गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम **पंजाब राज्य** ; 6

[1931] ए. आई. आर. 1931 इलाहाबाद 356 :
एम्परर बनाम **हचिन्सन** ; 6

[1924] ए. आई. आर. 1924 कलकत्ता 476 :
नागेन्द्र बनाम **किंग एम्परर** । 6

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2018 की दांडिक अपील सं. 227.

2017 के दांडिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन सं. 18235 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 21 सितम्बर, 2017 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री धरनीधर झा, ज्येष्ठ अधिवक्ता, रजनीश कुमार झा, रमन कुमार सिंह और महेन्द्र कुमार

प्रत्यर्थियों की ओर से सुश्री ऐश्वर्या भाटी, अपर महान्यायवादी, सर्वश्री डी. पी. चतुर्वेदी, रवि पंवार, अनुव्रत शर्मा और (सुश्री) अलका सिन्हा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर ने दिया ।

न्या. लोकुर – इजाजत दी जाती है ।

2. दांडिक न्यायशास्त्र की मूलभूत अभिधारणा निर्दोषिता की उपधारणा है, जिसका अर्थ यह है कि जब तक किसी व्यक्ति को दोषी नहीं पाया जाता तब तक उसके बारे में यह विश्वास किया जाता है कि वह निर्दोष है । तथापि, हमारी दंड विधि में ऐसे उदाहरण भी हैं जहां कुछ विनिर्दिष्ट अपराधों के संबंध में किसी अभियुक्त पर विपरीत भार डाला गया है किन्तु यह एक अलग विषय है और इससे अन्य अपराधों की बाबत

मूलभूत अभिधारणा का अपकर्षण नहीं होता है । फिर भी, हमारे दांडिक न्यायशास्त्र का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह है कि जमानत मंजूर करना एक साधारण नियम है और किसी व्यक्ति को जेल या किसी कारागार में या किसी सुधार-गृह में डालना (कोई भी किसी भी अभिव्यक्ति का प्रयोग कर सकता है) एक अपवाद है । दुर्भाग्यवश, ऐसा प्रतीत होता है कि इन मूलभूत सिद्धांतों में कुछ सिद्धांतों की अनदेखी की गई है जिसके परिणामस्वरूप अधिक से अधिक व्यक्तियों को लंबी-लंबी अवधियों के लिए बन्दी बनाया जा रहा है । इससे हमारे दांडिक न्यायशास्त्र या हमारे समाज को कोई फायदा नहीं होता है ।

3. इस संबंध में कोई संदेह नहीं है कि जमानत मंजूर करना या उससे इनकार करना संपूर्णतः उस न्यायाधीश के विवेकाधिकार पर निर्भर करता है जो मामले पर विचार कर रहा है किन्तु फिर भी न्यायिक विवेकाधिकार के प्रयोग को इस न्यायालय द्वारा और देश के प्रत्येक उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए अनेक विनिश्चयों द्वारा परिसीमित किया गया है । तथापि, कभी-कभी इस संबंध में आत्मनिरीक्षण करने की आवश्यकता होती है कि किसी मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों के आधार पर किसी अभियुक्त व्यक्ति को जमानत देने से इनकार करना सही है अथवा नहीं ।

4. इस प्रकार आत्मनिरीक्षण करते समय जिन कारकों पर विचार करना आवश्यक होता है वे ये हैं कि क्या अभियुक्त को अन्वेषण के दौरान तब गिरफ्तार किया गया था जब उस व्यक्ति के पास साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने या साक्षियों को प्रभावित करने का संभवतः सर्वोत्तम अवसर था । यदि अन्वेषक अधिकारी किसी अभियुक्त को अन्वेषण के दौरान गिरफ्तार करना आवश्यक नहीं समझता है तो आरोप पत्र फाइल किए जाने के पश्चात् उस व्यक्ति को न्यायिक अभिरक्षा में रखने का ठोस मामला साबित किया जाना चाहिए । इसी प्रकार, यह अभिनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि क्या अभियुक्त अन्वेषक अधिकारी के समाधानप्रद रूप में अन्वेषण में भाग ले रहा था और फरार नहीं हो गया था या जब अन्वेषक अधिकारी द्वारा अपेक्षा की गई थी, उपस्थित नहीं हो रहा था । निश्चित रूप से, यदि कोई अभियुक्त अन्वेषक अधिकारी से बच नहीं रहा है या पीड़ित किए जाने संबंधी किसी वास्तविक और अभिव्यक्त भय के कारण छिप रहा है तो यह एक ऐसा कारक होगा जिस पर किसी न्यायाधीश के लिए समुचित मामले में विचार करना आवश्यक होगा । न्यायाधीश के लिए इस बात पर विचार करना भी आवश्यक है कि क्या अभियुक्त का यह प्रथम अपराध है या वह

अन्य अपराधों के लिए भी अभियुक्त रहा है और यदि ऐसा है तो ऐसे अपराधों की प्रकृति और उसका साधारण आचरण कैसा था । किसी अभियुक्त की गरीबी या मानित दीनहीन हैसियत भी एक अत्यंत महत्वपूर्ण कारक है और संसद् ने भी दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 436 में स्पष्टीकरण सम्मिलित करते समय इस बात को ध्यान में रखा है । संसद् ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में धारा 436क अंतःस्थापित करके बन्दी बनाने के संबंध में उदार दृष्ठिकोण अपनाया है ।

5. संक्षेप में, किसी न्यायाधीश से, किसी संदिग्ध व्यक्ति को रिमांड पर भेजने या किसी अभियुक्त व्यक्ति को पुलिस अभिरक्षा या न्यायिक अभिरक्षा में भेजने संबंधी किसी आवेदन पर विचार करते समय मानवीय रुख अपनाने की अपेक्षा होती है । इसके लिए अनेक कारण हैं, जिनके अंतर्गत अभियुक्त व्यक्ति की, चाहे वह कितना ही निर्धन क्यों न हो, गरिमा बनाए रखना, संविधान के अनुच्छेद 21 की अपेक्षाएं और यह तथ्य भी शामिल है कि कारागारों में अपराधियों की संख्या अत्यधिक है जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक और अन्य समस्याएं पैदा हो रही हैं, जैसा कि इस न्यायालय ने **इन रि-इनह्यूमेन कंडीशन्स इन 1382 प्रिज़न्स**[1] (1382 कारागारों में अमानवीय दशाएं) वाले मामले में अपेक्षा की है ।

6. जमानत से संबंधित उपबंध की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को **नीकेश ताराचंद शाह** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में दिए गए हाल ही के विनिश्चय में विस्तृत और सुबोधगम्य रूप से स्पष्ट किया गया है, जिसमें मैग्ना कार्टा के काल का उल्लेख भी किया गया है । उस विनिश्चय में, **गुरबख्श सिंह सिब्बिया** बनाम **पंजाब राज्य**[3] वाले मामले के प्रति निर्देश किया गया है, जिसमें यह मत व्यक्त किया गया है कि बहुत पहले **नागेन्द्र** बनाम **किंग एम्परर**[4] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जमानत को दंड के रूप में रोका नहीं जाना है । **एम्परर** बनाम **हचिन्सन**[5] वाले मामले के प्रति भी निर्देश किया गया था जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था कि जमानत मंजूर करना नियम है और उससे इनकार करना अपवाद है । अतः जमानत से संबंधित उपबंध प्राचीन है और जमानत से

---

[1] (2017) 10 एस. सी. सी. 658.
[2] (2017) 13 स्केल 609.
[3] (1980) 2 एस. सी. सी. 565.
[4] ए. आई. आर. 1924 कलकत्ता 476.
[5] ए. आई. आर. 1931 इलाहाबाद 356.

संबंधित उपबंध का उदार निर्वचन करना लगभग एक शताब्दी पुराना है जो कि औपनिवेशिक काल का है ।

7. तथापि, हमारे कहने का यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि जमानत प्रत्येक मामले में मंजूर की जानी चाहिए । जमानत मंजूर करना या उससे इनकार करना संपूर्णतः उस न्यायाधीश के विवेकाधिकार के भीतर आता है जो मामले की सुनवाई कर रहा है और यद्यपि वह विवेकाधिकार निरंकुश है तथापि, इसका प्रयोग न्यायसम्मत रूप से और मानवीय रीति में और सहानुभूतिपूर्वक किया जाना चाहिए । इसके अलावा, जमानत मंजूर करने से संबंधित शर्तें इतनी कठोर नहीं होनी चाहिए जिससे कि उनका अनुपालन करना अक्षम हो, जिससे जमानत मंजूर करना अवास्तविक हो जाए ।

8. हम प्रस्तुत अपील में ये मताभिव्यक्तियां करने के लिए बाध्य हुए हैं, जिसमें जमानत मंजूर करने का राज्य द्वारा विरोध नहीं किया गया है किन्तु परिवादी की ओर से जोरदार विरोध किया गया है ।

9. परिवादी ने तारीख 13 जनवरी, 2016 को पुलिस थाना सहजनवा, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश में यह अभिकथन करते हुए 2016 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 16 दर्ज कराई कि अपीलार्थी ने उसके साथ 37 लाख रुपए से अधिक की रकम का छल किया था और इसलिए उसने भारतीय दंड संहिता की धारा 419, 420, 406 और 506 के अधीन दंडनीय अपराध कारित किया था । यह भी अभिकथन किया गया था कि अपीलार्थी ने परिवादी के पक्ष में 18 लाख रुपए का एक चैक जारी किया था (जिसके द्वारा 37 लाख रुपए की रकम का एक भाग लौटाया गया) किन्तु उसने परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 का अतिक्रमण करते हुए उस चैक का भुगतान रुकवा दिया था ।

10. इसके पश्चात्, परिवादी ने तारीख 21 जनवरी, 2016 को या उसके आसपास अपीलार्थी द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन अपराध कारित किए जाने का अभिकथन करते हुए 2016 का परिवाद मामला सं. 206 फाइल किया । इस परिवाद मामले में संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिया गया और अपीलार्थी को समन जारी किए गए ।

11. अन्वेषक अधिकारी ने, काफी समय पश्चात्, तारीख 15 अगस्त, 2016 को या उसके आसपास अपीलार्थी के विरुद्ध एक आरोप पत्र फाइल

किया जो कि 2017 का मामला अपराध सं. 18 है । यह स्पष्ट नहीं है कि अपराध मामला इतनी देर से क्यों रजिस्ट्रीकृत किया गया (यह मुद्रण संबंधी गलती भी हो सकती है) किन्तु चाहे कुछ भी हो, ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी को अन्वेषण के दौरान गिरफ्तार नहीं किया गया था ।

12. अपीलार्थी ने, अपने विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किए जाने के पश्चात् गिरफ्तारी के डर से इलाहाबाद उच्च न्यायालय में अपने विरुद्ध दर्ज प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित करने के लिए समावेदन किया । मामले के अभिलेख से यह प्रकट होता है कि उच्च न्यायालय ने तारीख 7 फरवरी, 2017 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित करने से इनकार कर दिया किन्तु अपीलार्थी को विचारण न्यायालय के समक्ष हाजिर होने के लिए दो मास का समय अनुदत्त किया । संभवतः, यह निदेश दिया गया था कि अपीलार्थी को इस अवधि के दौरान गिरफ्तार नहीं किया जाना चाहिए । अपीलार्थी ने तारीख 11 अप्रैल, 2011 को एक बार फिर से इलाहाबाद उच्च न्यायालय में समावेदन किया और इस बार उसने विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए दो सप्ताह की अतिरिक्त अवधि की मांग की । ऐसा प्रतीत होता है कि यथा-प्रार्थित समय अनुदत्त कर दिया गया और अंततः, तारीख 24 अप्रैल, 2017 को अपीलार्थी विचारण न्यायाधीश के समक्ष हाजिर हुआ और उसे न्यायिक अभिरक्षा में ले लिया गया था । अपीलार्थी तब से न्यायिक अभिरक्षा में है ।

13. अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया जमानत संबंधी आवेदन विचारण न्यायाधीश द्वारा तारीख 27 अप्रैल, 2017 को नामंजूर कर दिया गया था और जमानत के लिए एक अन्य आवेदन इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 21 सितम्बर, 2017 को नामंजूर कर दिया गया था (इसे हमारे समक्ष चुनौती दी गई है) ।

14. तारीख 23 जनवरी, 2018 को, जब यह अपील हमारे समक्ष सूचीबद्ध की गई थी तब परिवादी का प्रतिनिधित्व विद्वान् काउन्सेल ने किया था हालांकि वह कार्यवाहियों में पक्षकार नहीं था । तथापि, परिवादी को अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल के मौखिक अनुरोध पर पक्षकार प्रत्यर्थी के रूप में शामिल कर लिया गया था । इसके बाद, उत्तर प्रदेश राज्य को सूचना जारी की गई थी जबकि परिवादी की ओर से उसके विद्वान् काउन्सेल ने सूचना अभिग्रहण की थी । विशेष इजाजत याचिका का उत्तर फाइल करने के लिए अनुरोध किया गया था और चूंकि अपीलार्थी काफी

लंबी अवधि से न्यायिक अभिरक्षा में था इसलिए इस प्रयोजन के लिए दो दिन का समय मंजूर किया गया था ।

15. यद्यपि उत्तर प्रदेश राज्य को अपील में तामील की गई थी तथापि, उसकी ओर से कोई भी हाजिर नहीं हुआ । जहां तक परिवादी का संबंध है, उस समय तक कोई उत्तर फाइल नहीं किया गया था जब कि मामले पर 29 जनवरी, 2018 को विचार किया गया था । तद्नुसार, मामले को तारीख 2 फरवरी, 2018 तक स्थगित कर दिया गया था और उस तारीख तक भी परिवादी द्वारा कोई उत्तर फाइल नहीं किया गया था । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अपीलार्थी को जमानत प्रदान करने का विरोध करने के लिए उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से कोई भी हाजिर नहीं हुआ है ।

16. परिवादी की ओर से विद्वान् काउन्सेल ने प्रबल रूप से यह दलील दी कि अपीलार्थी ने उससे पर्याप्त धनराशि ठगी है और उसके विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें अपीलार्थी को इस न्यायालय द्वारा जमानत मंजूर की जानी चाहिए । विद्वान् काउन्सेल ने विचारण न्यायाधीश तथा इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए मत का समर्थन किया । उसने यह तर्क दिया कि अपीलार्थी के इस आचरण को देखते हुए कि उसने न केवल परिवादी के साथ धोखा किया है और उसे पर्याप्त धनराशि से वंचित किया है बल्कि इसके पश्चात् ऐसा चैक जारी किया जिसका भुगतान रुकवा दिया गया, यह खारिज किए जाने का समुचित मामला है ।

17. हमारी राय में, अपीलार्थी के विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों की शुद्धता या अन्यथा के बारे में परीक्षा करना आवश्यक नहीं है । यह एक ऐसा मामला है जिस पर निसंदिग्ध रूप से विचारण न्यायाधीश द्वारा कार्यवाही की जाएगी । तथापि, जहां तक हमारा संबंध है, जो कुछ महत्वपूर्ण है वह यह है कि अन्वेषण की संपूर्ण अवधि के दौरान, जो कि ऐसा प्रतीत होता है कि सात मास से अधिक थी । अपीलार्थी को अन्वेषक अधिकारी द्वारा गिरफ्तार नहीं किया गया था । तब भी जब अपीलार्थी को यह आशंका थी कि उसके विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किए जाने के पश्चात् उसे गिरफ्तार किया जा सकता है, उसे काफी समय तक गिरफ्तार नहीं किया गया था । जब उसने अपने विरुद्ध दर्ज की गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित करने के लिए इलाहाबाद उच्च न्यायालय में समावेदन

किया तब उसे विचारण न्यायाधीश के समक्ष हाजिर होने के लिए दो मास का समय अनुदत्त किया गया था । ये सभी तथ्य इस बात के सूचक हैं कि इस बात की कोई आशंका नहीं थी कि अपीलार्थी फरार हो जाएगा या विचारण में किसी रीति में बाधा पहुंचाएगा । इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए, विचारण न्यायाधीश तथा उच्च न्यायालय को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायसम्मत रूप से करना चाहिए था और अपीलार्थी को जमानत मंजूर करनी चाहिए थी । किसी भी पक्षकार का यह पक्षकथन नहीं है कि अपीलार्थी का चरित्र संदेहास्पद है और अभिलेख में यह उपदर्शित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि अपीलार्थी इससे पूर्व किसी अस्वीकार्य गतिविधि में अंतर्वलित रहा था, चाहे वह कोई अभिकथित अवैध क्रियाकलाप ही क्यों न हो ।

18. हमारी राय में, इन सभी बातों और अन्य कारकों पर विचार करते हुए, यह उचित होगा यदि अपीलार्थी को उन शर्तों पर, जो कि विचारण न्यायाधीश द्वारा युक्तिसंगत रूप से नियत की जाएं, जमानत मंजूर की जाए । हम तद्नुसार आदेश करते हैं ।

19. हमारे कहने का यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि हमने आरोप पत्र तथा परिवाद मामला, दोनों में अपीलार्थी के विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों के बारे में कोई राय अभिव्यक्त की है ।

20. अपील मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

ग्रो.